आसिफ़ा के लिए न्याय

(यह कविता अंग्रेजी में है। जिसका भावानुवाद मैंने बहुत जल्दी में करने की कोशिश की है। इस कविता को कलात्मक पक्ष के उद्देश्य से न पढ़ें । बल्कि हमारी बिटिया आसिफ़ा के दर्द, पीड़ा को समझें ।)

मैंने घोड़ों को घर वापिस भेज दिया
माई
मैंने घोड़ों को खदेड़ दिया
और उन्हें घर वापिस का रास्ता मिल गया ।

बस...! मैं ऐसा न कर सकी।
मेरे पाँव जैसा तुम सोचती थी,
हिरणी की पाँव से फुर्तीले हैं
वे बर्फ से जम गए
हाँ माई! वे जड़ हो गए।

लेकिन मैंने घोड़ों को घर वापिस भेज दिया ।

माई! उन राक्षसों के
न कोई सींग, न कोई नुकीले दाँत
न ही भयानक लंबे - लंबे नाखून ।
लेकिन उन्होंने नोचा-काटा
माई! उन्होंने मेरा शरीर कर दिया तार-तार ।

बैंगनी फूल
रंगबिरंगी तितलियाँ
सब थीं नि:सहाय।
इसके बावजूद,
मैंने घोड़ों को घर वापिस भेज दिया ।

माई! बाबा को बताना कि
मुझे पता है
हाँ मैं जानती हूँ --
उन्होंने बहुत कोशिश की
मुझे तलाशने की
मैंने उनको सुना कई बार
पुकारते हुए अपना नाम
हाँ बहुत उँची आवाज में अपना नाम
लेकिन माई
मुझे सुला दिया था
उन राक्षसों ने
कर दिया था मेरा जिस्म, तार-तार ।

मेरा खून
सूख चुका था अब तक
अब और दर्द नहीं होता
अजीब सी तुम्हारी गर्माहट महसूस होती है
सूखा खून
बैंगनी फूल लगते हैं
जो मेरे साथ खलिहानों में झूलते थे
माई! अब और चोट नहीं पहुँचाते ।

माई! राक्षस अभी भी बाहर हैं
और मेरे बारे में बहुत सी कहानियां भी
माई, उन पर ध्यान न देना
वे ह्रदय विदारक हैं
बहुत ही पीड़ादायक हैं
जिनसे तुम पहले ही गुजर चुकी हो।

माई!
ऐसा न हो कि
मैं भूल जाऊँ
वहाँ एक मंदिर भी था
जहाँ एक देवी का वास भी था
उसका बहुत बहुत शुक्रिया
जैसे मुझे लगता है
उसी ने मदद की-
घोड़ों को अपने घर का रास्ता मिल गया ।

अनुवाद : दीपक वोहरा

शारिक़ अहमद ख़ान की कलम से

मुसलमानों के यहाँ से रवायतें ख़त्म हो रही हैं....

पहले मुसलमान ख़ुद रंग खेलते थे।आज के दौर में होली के रंग की छींट पड़ जाने से कई बार दंगे तक हो चुके हैं। हमारे आज़मगढ़ के गांवों के मुसलमान किसानों का एक त्योहार होता था 'ऊख बुवाई' मतलब खेतों में गन्ना बोने का त्योहार। शारिक़ ने बचपन में ख़ुद ये त्योहार देखा है। गन्ने की खेती अकेले हो नहीं सकती लिहाज़ा भोर में फ़जर की नमाज़ पढ़ने के बाद लोग उसके खेत में जाते जिसके खेत में गन्ने की बुवाई की पारी होती। भीगे हुए गन्ने आते, लोग बैठकर टुकड़े काटते,अपने हल बैल ले जाते, ऊख बुवाई होती। सुबह नाश्ते में शर्बत -चना बंटता।सूरज चढ़े चाश्त की नमाज़ के वक़्त ऊख भोज होता जिसमें खेत में ही कंडे और लकड़ी पर हल्का और सादा नाश्ता बनता। जैसे चने का नमूना। दाल की पूड़ी। सोहाली। भऊरी -चोखा। लोग खाते -पीते और हंसी मज़ाक़ करते।

काम मज़दूर भी करते तो ऊख भोज में गांव बुलाया जाता। दोपहर को जिसके खेत में बुवाई हो रही है वो अपने घर खाना बनवाता था। देगें चढ़तीं।बकरे कटते। आबी नान का तंदूर दहकता। जैसे ही खेत बुवाई वाले लोग दरवाज़े पर आते तो बाल्टियों में पानी और रंग घोलकर तैयार रहता। एक दूसरे पर फेंकते। फाग गाया जाता। गन्ना बोने की मतलब ऊख बुवाई की ख़ुशी मनती।।। हुक्का जगता।

आज आज़मगढ़ के मुसलमानों में इस तरह से रंग खेलना मुमकिन ही नहीं है। सोचा भी नहीं जा सकता। लेकिन मैंने अपनी आंखों से ये देखा है। जब तक मेरे दादा जी जीवित रहे, हमारे यहाँ ऊख बुवाई की धूम होती रही।जबकि और जगहों पर पहले ही बंद हो गई थी लेकिन दादा ने रवायत कायम रखी थी। अफ़सोस कि हम उस रवायत को बरकरार नहीं रख पा रहे हैं। हम चाहें और सिर नीचे और पैर ऊपर कर पूरा ज़ोर भी लगा दें तो कोई मुसलमान अब मेरे साथ रंग खेलने को लिए और फाग गाने के लिए तैयार नहीं होगा।अलबत्ता हम टाट बाहर ज़रूर हो जाएंगे।

दरअसल ये ऊख बुवाई वाली बात सन् 1992 के पहले की है। 92 में जब बाबरी मस्जिद गिरी तो हिंदोस्तानी समाज दो फाड़ हो गया।सदियों की पुख्ता दीवारें दरक गईं। हिंदू कट्टर हो गया तो मुसलमान भी कट्टर हो गया। रंग खेलना और फाग गाना ग़ैर इस्लामी करार दे दिया गया। अब ये दूरी बजाय घटने के और बढ़ती जा रही है।इसके ज़िम्मेदार हम सब हैं। मैं भी, आप भी और पूरा हिंदोस्तानी समाज। हिंदू-मुस्लिम सब।कोई बरी नहीं है।।

आज़मगढ़ के जिन मुसलमानों ने 1937 में मुस्लिम लीग को आज़मगढ़ से बुरी तरह हराकर सबक सिखा दिया था वो 1992 के बाद इस्लामी पहचान को मज़बूत कर रहा है।।चुनावों में एकतरफ़ा वोटिंग कर अपने मुसलमान उम्मीदवार को जिताने के लिए ताकत झोंक देता है। ज़्यादातर कामयाब भी रहता है। मुसलमान हिंदोस्तानी रवायतों को छोड़ रहा है और ख़ालिस इस्लामी रवायतों को अपना रहा है। इसका अंजाम एक दिन पूरा हिंदोस्तानी समाज भुगतेगा। क्या हिंदू क्या मुसलमान दोनों भुगतेंगे। वजह कि दोनों कट्टरता फैलाने के लिए बराबर के दोषी हैं.... ख़ैर।

जब गर्मी के मौसम में पानी नहीं बरसता तो आज़मगढ़ के मुसलमानों के गांवों के मुसलमान बच्चे गांव-गांव सबके दरवाज़े जाते और ज़मीन में लोट लगाते हुए गाते कि

"काल कलौती उज्जर धोती।
कारे मेघा पानी दे।
अल्लाह के दो बैल पियासे।
चुल्लू भर-भर पानी दे "

औरतें बच्चों के ऊपर दरवाज़े से पानी फेंकतीं। बच्चे ज़मीन में लोट लगाते। कुछ अनाज भी मिलता जिसे बरफ़ वाले को देकर बरफ़ खाते। अगर पानी बरस जाता तो इसे काल कलौती का परसाद मतलब प्रसाद माना जाता। अब मौलानाओं ने इसे ग़ैर इस्लामी करार दे दिया है।

हिंदुओं की तरह मुसलमानों में भी शादी के मौक़े पर नाऊ न्योता देने जाता और हल्दी बांटता। नेग पाता।कार्ड का चलन नहीं था।हल्दी की रस्म होती और मेंहदी की भी रस्म का चलन था। तीन दिन की बारात जाती। सेहरा बांध के दूल्हा घोड़ी चढ़ता और गांव भर घूमकर सबके दरवाज़े जाकर सलाम करता। दूल्हे को हर घर से शर्बत मिलता। कहीं दही मिलता तो कहीं मट्ठा। बारात लड़की के गांव बारात पहुंचती तो लड़के वाले बुज़ुर्ग खटिया पर खड़े हो जाते और इंतेज़ाम में कमियां निकालकर लड़की वालों को डांट पिलाते। दूल्हे के साथ नाई होता जो दूल्हे की सेवा करता। गर्मियों में पंखा झलता।

बारात में ऐसे हिंदू भी होते जो गोश्त वग़ैरह नहीं खाते थे। ऐसे हिंदुओं को नौहंडिया कहा जाता था। मतलब जो अपनी मिट्टी की हंडिया में ख़ुद खाना बनाते थे। कुछ के लिए कहार खाना बनाते थे तो कुछ अपना कच्चा खाना ख़ुद बनाते। मुसलमान लोगों के लिए बकरे कटते। भैंसे का चलन नहीं था और बकरे का गोश्त सस्ता था। सभी बाराती जनवासे में रहते और पूरा गांव घूमते। जनवासे में दनादन हुक्के ताज़े होते रहते थे। मिट्टी के हुक्के जिसकी सोंधी ख़ुशबू तंबाकू के किवाम की लज़्ज़त दोबाला करती थी। दूसरे दिन निकाह होता तो सेहरा पढ़ा जाता और गट्ठे की लुटाई होती। मड़वा होता। खिचड़ी खवाई के बाद तीसरे दिन लौटती थी। शारिक़ ख़ुद बचपन में तीन दिन की बारात में शामिल हुए हैं।

जब दुल्हन दरवाज़े आती तो नंदें दुल्हन को गोद में उठाकर उतारतीं और फिर लाइन से रखी दऊरी मतलब बड़ी डलिया में पैर रखकर ही दुल्हन घर में दाख़िल होती। दऊरी में एक -एक मुट्ठी चावल के दाने रखे रहते। दुल्हन के साथ नाईन आती थी। फिर सबको नेग बंटता। नाई-नाईन। बरई से लगायत शादी में काम करने वाले सभी को। शहबालों का हिस्सा बंटता।ये सब शारिक़ ने ख़ुद देखा है। लेकिन अब ये सब बंद हो गया है। मौलानाओं ने इन रवायतों को ग़ैर इस्लामी और हिंदुआना घोषित कर दिया है।

आजकल सादे निकाह ज़्यादा चलन में हैं जिसमें कोई धूम नहीं होती। पहले बहुत से गांव के ज़मींदार मुसलमान धोती पहना करते थे। अब कोई नहीं पहनता। पहले मुहर्रम पर मलीदा बंटता था और ताज़िया बैठता था।अब ये सब बंद है। ढोल-ताशा बजता। मौलानाओं ने कहा कि ये सब ग़ैर इस्लामी है लिहाज़ा आज़मगढ़ के मुसलमान गांववालों ने बंद कर दिया है।

छिटपुट कथित छोटी जातियों में कहीं -कहीं और शहर में बस नाम का मुहर्रम होता है क्योंकि शिया यहाँ न के बराबर हैं। गिनती के हैं।अब मुहर्रम की वो धूम नहीं होती। पहले सभी गांव के अशराफ़ सुन्नी मुसलमान भी धूम से मोहर्रम मनाते थे। ये अवध के नवाबी दौर का प्रभाव था जो पच्चीस -तीस साल पहले ख़त्म हो गया। मौलानाओं ने बता दिया कि ये शिर्क है। हराम है और ग़ैर इस्लामी है।

आज़मगढ़ के बहुत से मुसलमान धोती-कुर्ते के ऊपर टोपी लगाकर नमाज़ पढ़ लेते थे। मौलानाओं ने कहा कि धोती में नमाज़ नहीं होगी वजह कि पीछे से पिंडली दिखती है। लोग पाजामा पहनने लगे। फिर पाजामा थोड़ा ऊंचा हो गया। अब जींस भी ऊंची आ रही है।पहले शादियों में शहनाई बजती थी। बाजा बजता था। ढफली बजती। मौलानाओं ने कहा शहनाई और बाजा बजाना हराम है।ढफली भी न बजाओ। लिहाज़ा अब वो भी बंद है।

आजकल रवायतें बदल रही हैं। मुसलमान अपने कल्चर से दूर हो रहा है और नया कल्चर समाज में जड़ें जमा रहा है। ये अच्छा नहीं हो रहा है। बहुत ग़लत हो रहा है। जिस समाज का अपना कल्चर ख़त्म हो जाता है वो समाज मरियल हो जाता है।

सफलता का वास्तविक स्वरूप वसुधैव कुटुम्बकम

आज के युग में हर कोई सफलता के पीछे भाग रहा है परन्तु वास्तविक सफलता क्या है, यह कोई नहीं जानता। वास्तव में हमारे समाज में सफलता के मापदण्ड ही बदल चुके हैं, माता-पिता बच्चे को विद्यालय केवल इसलिए भेज रहे हैं कि उनका बच्चा ज्यादा से ज्यादा अंक प्राप्त कर सके। इसके बदले चाहे बच्चों में नैतिक ज्ञान नाममात्र भी न हो। वहीं, सफलता केवल उच्च आय प्राप्त करना ही रह गया है।

सुरक्षा के नियमों को ताक पर रखकर अभिभावक बिना हैलमेट और लाईसेस के दोपहिया वाहन अपने बच्चों को देते हैं। बच्चों को समय की पाबंदी सिखाना, अपने वातावरण को स्वच्छ रखना, शिक्षक का आदर करना, नम्बर और पैसे की दौड़ में अभिभावक के लिए यह सब कुछ महत्वहीन हो चुका है। आज लैपटॉप और मोबाईल माता-पिता की सफलता की निशानी हैं। अपने बच्चों को महंगे उपहार इनाम स्वरूप देना फैशन बन गया है। ऐसे में तकनीक का दुरुपयोग बच्चों की सुरक्षा को गंभीर स्थिति में डाल देता है परन्तु माता-पिता इस ओर ध्यान नहीं देते। आज सभी के लिए सफलता स्वयं की निजता एवं महत्वकांक्षा का विषय बन गया है। जबकि, एक सफल विद्यार्थी वही है जो सफलता के वास्तविक रूप को पहचाने अर्थात उसमें स्वयं के अध्ययन का गुण हो। अपनी स्वास्थ्य और दिनचर्या के प्रति सचेत हो, सुरक्षा संबंधी नियमों के प्रति जागरूक हो, जिसमें शिक्षा का नहीं ज्ञान का आदर हो, जिसे डिग्री नहीं दक्षता की आवश्यकता है जो अपने गुरू के प्रति सम्मान प्रकट करे, विद्यालय के प्रति आदर प्रकट करे। जिस विद्यार्थी में यह सभी सामाजिक गुण होंगे वहीं सफल नागरिक बन पायेगा एवं स्वस्थ और शांतिपूर्ण समाज का निर्माण कर सकेगा।

सफलता का वास्तविक स्वरूप वसुधैव कुटुम्बकम होना चाहिए न कि निज स्वार्थ एवं महत्वकांक्षा। तभी हम सही अर्थ में सफल हैं।

ऋषिपाल चौहान
चेयरमैन
जीवा पब्लिक स्कूल